ओबामा को नोबेल दिया जाना हास्यास्पद

अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा को शांति का नोबेल पुरस्कार दिया जाना वैसा ही है जैसा किसी नरभक्षी भेड़िये को शाकाहारी बताया जाये। यह घनघोर आश्चर्य की बात है कि नोबेल पुरस्कार समिति ने आखिर किस आधार पर ओबामा को शांति के नोबेल पुरस्कार के योग्य माना। हर समझदार आदमी के मन में यह सवाल उठ रहा है कि बराक ओबामा ने विश्व शांति की दिशा में आखिर क्या प्रयास किया है जिसके लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार दे कर हीरो बना दिया है। ओबामा को नोबेल पुरस्कार देने से इस पुरस्कार की साख खत्म हो गई है। साथ ही यह साबित हो गया है कि नोबेल पुरकार समिति में साम्राज्यवाद के एजेंट बैठे हुए हैं।

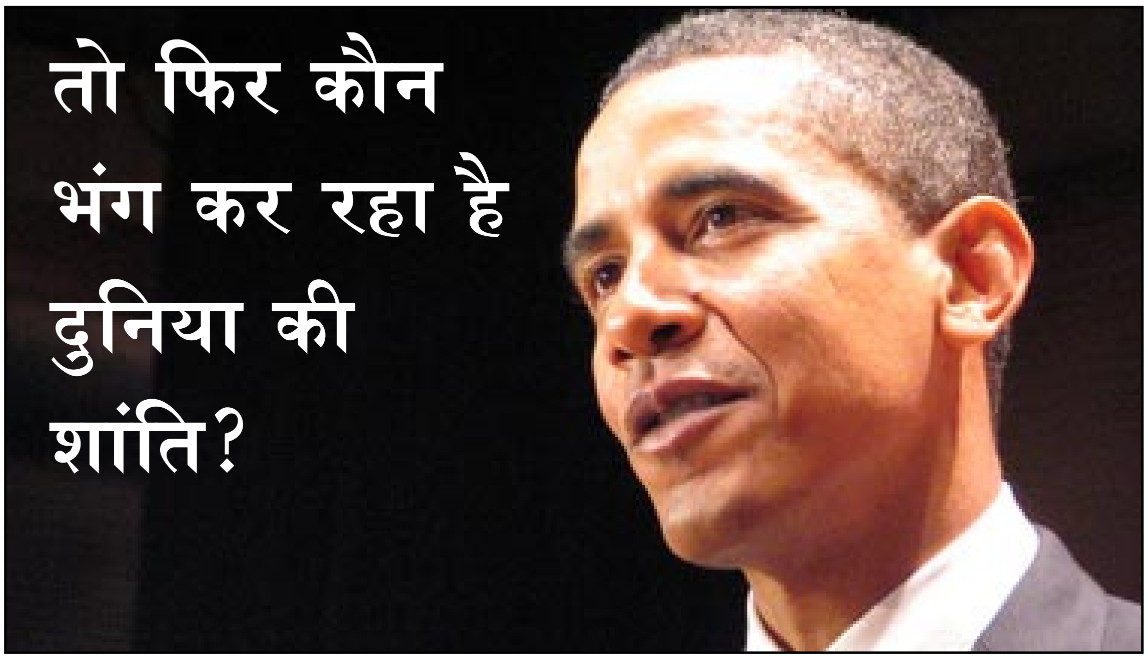

नोबेल पुरस्कार मिलने से ओबामा और उन्हें चाहने वाले 'बुद्धिजीवी' खुशी से फूले नहीं समा रहे हैं। दुनिया के अनेकों राजनेताओं ने उन्हें बधाई दी है। उन्हें बधाई देने वालों में सोवियत संघ में तथाकथित समाजवाद का जनाजा निकालने वाले और शांति का नोबेल पुरस्कार पा चुके मिखाइल गोर्वाचोव भी हैं। सोवियत संघ के अंतिम राष्ट्रपति मिखाइल गोर्वाचोव को जब शांति का नोबेल पुरस्कार दिया गया था तो भी लोगों को काफ़ी आश्चर्य हुआ था। आखिर, इस तर्क से इस बात को समझा गया कि गोर्वाचोव साम्राज्यवादियों के अतिप्रिय हैं, क्योंकि उनके नेतृत्व में ही सोवियत संघ का विघटन हुआ और अमेरिका यह दावा करने लगा कि अब वह दुनिया की एकमात्र महाशक्ति है। कहा गया कि सोवियत संघ के नष्ट हो जाने से दुनिया में अब शीतयुद्ध समाप्त हो गया है। पर ओबामा को पुरस्कार दिये जाने का कोई आधार दिखाई नहीं पड़ता। पहले यह कहा जा रहा था कि बुश की जगह ओबामा के राष्ट्रपति बनने से अमेरिका की नीतियों में बदलाव आयेगा। पर अब तक कोई बदलाव नहीं आया।

ओबामा के राष्ट्रपति बनने को कुछ बुद्धिजीवी एक 'क्रांतिकारी' परिघटना बता रहे थे, क्योंकि वे राष्ट्रपति बनने वाले पहले ब्लैक हैं। यह ठीक है कि अमेरिका में काले व नीग्रो लोग़ों के साथ भेदभाव की नीति अपनायी जाती है, पर सत्ता के उच्चतम सोपानों पर पहुंचने बाद काले और गोरे में कोई फ़र्क नहीं रह जाता। उदाहरण के लिए हम अपने ही देश में देखें तो किसी दलित के राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री अथवा मुख्य न्यायाधीश बन जाने से कोई बदलाव नहीं आ जाता। दलितों की स्थिति पूर्ववत ही बनी रहती है। यही बात अमेरिका के लिए भी सच है। शासक चाहे काला हो या गोरा, ब्राह्मण हो या शूद्र, उसका शोषक चरित्र बरकरार रहता है।

बहरहाल, अमेरिका के शासक को नोबेल पुरस्कार मिलने से पहले से ही स्पष्ट यह सच कि यह पुरस्कार व्यापक जनता के हितों से जुड़े लोग़ों को न मिल कर किसी भी ऐसे व्यक्ति को दिया जा सकता है जो साम्राज्यवाद के चाकर हों अथवा साम्राज्यवादी हितों के लिए काम करने में उन्हें कोई गुरेज़ न हो। आज अमेरिका पूरी दुनिया में अशांति अथवा युद्ध जैसी स्थिति के लिए जिम्मेवार है। जिन रासायनिक व जैविक हथियार होने की झूठी बात के लिए उसने इराक पर हमला बोला और राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन को आनन-फ़ानन में फांसी पर चढ़ा दिया, वैसे हथियार अमेरिका में भरे पड़े हैं। दुनिया में सबसे ज्यादा परमाणु हथियार अमेरिका के ही पास हैं। पर अमेरिका चाहता है कि दूसरे देशों के पास परमाणु शक्ति न हो। इसके लिए वह जी-तोड़ प्रयास करता है, भले ही उसे सफ़लता मिले या नहीं। अमेरिका ने इराक को तबाह कर दिया है। लोग़ों को यह उम्मीद थी कि ओबामा राष्ट्रपति बन जायेंगे तो इराक से अमेरिकी फ़ौज की वापसी हो जायेगी। पर फ़ौज की वापसी नहीं हुई। अमेरिका ने एक तरह से इराक पर कब्ज़ा कर लिया है और अमेरिकी कंपनियां वहां मौजूद तेल के भंडार का अंधाधुंध दोहन कर अकूत मुनाफ़ा कमा रही हैं। दूसरी तरफ़, वहां की जनता बेहाल है। वहां गृहयुद्ध जैसी स्थिति बरसों से बनी हुई है। अफगानिस्तान का भी वही हाल है। वहां भी अमेरिकी फ़ौज मौजूद है। तालिबानी आतंकवादी रोज़ ही अमेरिकी सेना को चुनौती दे रहे हैं, राष्ट्रपति करजई अपने महल से निकल नहीं सकते। पाकिस्तान को परोक्ष तौर पर अमेरिका ने अपना गुलाम बना रखा है। वहां कोई भी सरकार अमेरिका की मर्जी के बगैर नहीं चल सकती। सभी जानते हैं कि आतंकवादी अमेरिका के ही पैदा किये हुए भस्मासुर हैं। अमेरिका विकासशील कहे जाने वाले और पिछड़े देशों की संप्रभुता पर प्रत्यक्षत: अथवा परोक्ष रूप में चोट करने की कोशिश करता है। वह भारत और पाकिस्तान के बीच युद्ध का हौआ खड़ा कर हथियारों की होड़ को बढ़ावा देता है। एक तरफ़ जहां यह अपने पास एक से एक विकसित हथियारों का ज़ख़ीरा रखता है, वहीं कुछ देशों को नि:शस्त्र करना चाहता है।

जहां तक ओबामा का सवाल है, इनकी नीतियां किसी भी रूप में बुश की नीतियों से भिन्न नहीं हैं। हो भी नहीं सकतीं। भेड़िया मांस ही नोच-नोच कर खायेगा, घास नहीं।

आज अमेरिका हर दृष्टि से विश्व शांति के लिये खतरा बना हुआ है। ऐसे में ओबामा को शांति का नोबेल पुरस्कार दिया जाना अत्यंत ही हास्यास्पद है। यह बात भी याद रखने की है कि एक समय विश्व प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक व लेखक ज्यां पाल सार्त्र ने नोबेल पुरस्कार को आलू का बोरा कह कर ठुकरा दिया था।

□ मनोज

लूट–खसोट के मामले में मायावती सबसे आगे

जनता का धन लूटने के मामले में, लगता है मायावती सबसे आगे है। बहुजन समाज पार्टी की यह नेत्री इतनी अमीर है कि भारत को तो छोड़ें, दुनिया के कई बड़े-बड़े नेता इससे पीछे हैं। इतना सारा धन इसने लोग़ों को लूट कर ही हासिल किया है। इसके पास आकाश से धन की वर्षा नहीं हुई है। जब सिर्फ़ दलितों के वोटों के बल पर चुनाव जीतने की चाल कामयाब होती नहीं दिखी तो इसने ऊंची जातियों को भी अपने साथ मिलाना शुरू किया जिन्हें पहले मंच पर से यह 'जूते चार' मारने की बात कहा करती थी। इसने बहुजन समाज की जगह सर्वजन समाज का नारा बुलंद किया और अपना मुख्य सलाहकार एक ब्राह्मण को बनाया। ऊंची जाति वाले लोग़ों ने भी सोचा कि चल इसे वोट दे, भला-बुरा जो होना है, वह तो होना ही है। परिणाम यह हुआ कि उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में इसे पूर्ण बहुमत हासिल हो गया और यह मुख्यमंत्री बन कर सोटे चलाने लगी। अपराधियों और माफ़िया को इसने चुन-चुन कर मंत्रिमंडल में स्थान दिया और पहले से ही लुटे-पिटे राज्य को जम कर लूटना शुरू कर दिया। इसने जनता से कहा कि वे देवी-देवताओं की पूजा न करें, उसकी पूजा करें। अब पूजा करने के लिए प्रतिमा तो होनी आवश्यक है। इसने आंबेडकर, कांशीराम के साथ-साथ अपनी भी आदमकद प्रतिमायें बनवानी शुरू की। लखनऊ से लेकर नोएडा तक। इसने पार्क बनवाने शुरू किये और उन पार्कों में दलित नेताओं के साथ अपनी मूर्तियां स्थापित करवाईं। इस पर उसने 27 सौ करोड़ रुपये खर्च किये। यहां 77 प्रतिशत आबादी सूखी रोटियों के लिये तरस रही है, लोग़ों के तन पर फटे कपड़े तक नहीं हैं, रहने को झोंपड़ी भी नहीं, और दलितों की यह 'महारानी' अपनी मूर्तियां लगवाने में सैंकड़ों करोड़ रुपये खर्च कर रही है। इससे अधिक नाइंसाफ़ी और भला क्या हो सकती है। राज्य के अफ़सरों को इसने अपना गुलाम बना लिया। कोई ऐसा न रहा जो स्वार्थवश अथवा भयवश इसके खिलाफ़ बोल सके। राजनीतिक दलों में भी इसके विरोध में कोई नहीं है, सिवा समाजवादी पार्टी को छोड़ कर। यहां तक सोनिया गांधी भी मायावती से मधुर संबंध बनाये रखना चाहती है। कांग्रेस गठबंधन के सत्ता में आते ही इसके खिलाफ चल रहे ताज कॉरीडोर मामले में सरकार के इशारे पर सीबीआई ने जांच बंद कर दिया। यह भी उल्लेखनीय है कि लालू और मुलायम के खिलाफ़ सीबीआई ने आय से अधिक संपत्ति होने के मामले में मुकदमा दर्ज कर जांच-पड़ताल शुरू की, पर मायावती पर इस तरह का मुकदमा चलाने की कोई जरूरत नहीं समझी गई। इस तरह केंद्र सरकार ने मायावती द्वारा समर्थन दिये जाने का पुरस्कार उसे दिया।

पिछला हिसाब जो बराबर करना है....

लेकिन न्यायपालिका ने लखनऊ में बन रहे कांशीराम स्मृति स्थल से संबंधित मामले की सुनवाई करते हुये सुप्रीम कोर्ट के दो जजों ने कहा कि यदि विधायिका बजट का 80 फ़ीसदी पार्कों और मूर्तियों के निर्माण पर लगाना चाहती है तो यह स्वीकार करने योग्य नहीं है। इस पर यह भी सवाल उठा कि न्यायपालिका को विधायिका द्वारा लिये गये निर्णयों पर टीका-टिप्पणी करने का अधिकार नहीं है। लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने इसका विरोध किया और कहा कि न्यायपालिका को विधायिका के कार्यों की समीक्षा का अधिकार है। उच्चतम न्यायालय का यह कहना वाजिब है। बहुमत से चुनी गई सरकार होने का यह मतलब नहीं कि सरकार का मुखिया सिर्फ़ मनमानी करे और कोई उसके खिलाफ़ चूं तक न कर सके। जहां तक बसपा का सवाल है, यह एक ऐसी पार्टी है जिसमें जनतंत्र नाम की कोई चीज नहीं है, यहां तक कि उसका कोई दिखावा भी नहीं है। वैसे भाजपा और वामपंथी पार्टियों को छोड़ दें तो तमाम दलों में यही हाल है। कांग्रेस का मतलब सोनिया गांधी है और लालू और मुलायम का मतलब राष्ट्रीय जनता दल और समाजवादी पार्टी है। दक्षिण भारत में भी पार्टियों का यही हाल है। तमिलनाडु में जयललिता और करुणानिधि भी अपने-अपने दलों के सुप्रीमो हैं। इस तरह देखा जाये तो लगभग सभी दल व्यक्ति केंद्रित हैं। ऐसी स्थिति में जो जनतंत्र होगा, वह नकली होगा। हमारे देश में नकली जनतंत्र जोर-शोर से चलता चला जा रहा है। विडंबना यह है कि यह 'दुनिया का सबसे बड़ा जनतंत्र' कहा जाता है।

बहरहाल, मायावती ने जनतंत्र के नाम पर जो अपना लूटतंत्र खड़ा किया है, उसका मुकाबला कोई अन्य दल नहीं कर सकता। आज तक देश में कोई ऐसा नेता पैदा नहीं हुआ जिसने मायावती की तरह लूट मचाई हो। इस मामले में उसने अब तक के सबसे बड़े लुटेरे लालू तक को पीछे छोड़ दिया। और आज तक देश में कोई ऐसा नेता नहीं हुआ जिसने अपनी आदमकद मूर्तियां बनवाई हों। यह सिर्फ़ हास्यास्पद ही नहीं, आपत्तिजनक भी है, क्योंकि इसके लिए सारा खर्चा राज्य के खज़ाने से किया जा रहा है। सुप्रीम कोर्ट के लिए स्वत: इस मामले पर संज्ञान लेना जरूरी है, पर न्यायपालिका की खुद अपनी ऐसी दुर्दशा हो चुकी है कि उससे यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह मायावती पर कोई अंकुश लगा सकेगी। आज जनता का सही मायने में प्रतिनिधित्व करने वाला कोई राजनीतिक दल सामने दिखाई नहीं पड़ता। जनता राजनीतिक रूप से परिपक्व नहीं है और उसकी चेतना का स्तर काफ़ी निम्न है। ऐसी हालत में जनता के सामने लुटने-पिटने के अलावा और कोई दूसरा विकल्प दिखाई नहीं पड़ता। मायावती जब तक सत्ता में रहेगी, वह अपनी मनमानी करेगी ही, क्योंकि भारत के विशिष्ट जनतंत्र में वह पूरी तरह निरंकुश है।

□ मनोज